ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 130-134**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- II, Issues-40, YEAR- April-June 2026

बिहार में गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम एवं उसके उद्देश्य

डॉ0 प्रमोद कुमार

विद्यालय अध्यापक (11–12), समाजशास्त्र, उच्च माध्यमिक विद्यालय, कुतलुपुर, खिजरसराय, गयाजी (बिहार) भारत

Received-18.04.2026, Revised-25.04.2026, Accepted-02.05.2026, **E-mail: prkr1985@gmail.com**

सारांशः ***गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य मात्र जन–सामान्य को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ना ही नहीं था बल्कि उनके अन्दर एक नवीन जागृति पैदा करना था, जिससे कि अंग्रेजों का भय देशवासियों के ह्रदय से सदा के लिये खत्म हो जाए। उनका अंतिम लक्ष्य था मानव जाति का नैतिक, चारित्रिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चलकर सत्याग्रही होना जिसे अपने जीवन में स्वीकार करने से ही सम्भव होगा। वस्तुतः गाँधीजी के क्रियाकलाप को समझने के लिए ह्रदयगम कर लेना चाहिए कि उनका सिद्धांत एक वृहत भवन के सदृश है जिसमें दो भिन्न–भिन्न मंजिलें हैं। नीचे ठोस आधार है धर्म की मूल भित्ति का। इस विशाल एवं अडिग भित्ति पर आधारित है राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलन।***[1]

कुंजीभूत शब्द– नवीन जागृति, राष्ट्रीय आन्दोलन, राजनीतिक व सामाजिक आन्दोलन, नैतिक, चारित्रिक, आर्थिक उत्थान, सत्य, अहिंसा।

गाँधीजी मात्र राजनीतिक आन्दोलनकर्ता ही नहीं थे, वरन् वे सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनकर्ता भी थे। इसलिए वे भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक एवं धार्मिक बुराईयों पर सीधा प्रहार न करके उसे अपने राजनीतिक कार्यक्रम से जोड़ दिया। उनकी दृष्टि में धर्म का अर्थ साम्प्रदायिकता नहीं है। इसका अर्थ है विश्व के सुव्यवस्थित नैतिक शासन पर विश्वास।[2] वे अपने धर्म के कर्मकाण्ड एवं उत्सवों का कट्टरतापूर्वक पालन ही नहीं करते थे, बल्कि व्यापकतम् अर्थ में धर्म दिव्यतम् की झांकी पाने में उनकी सहायता करता था। नैतिक बोध का पूर्ण विकास बिना झाँकी असंभव है, अतएव उनके लिए धर्म एवं नैतिकता पयार्यवाची शब्द हैं।[3] सच्चा धर्म एवं नैतिकता एक दूसरे से अविच्छेद भाव से आबद्ध) है। धर्म का नैतिकता से वही सम्बन्ध है, जो जल का भूमि के बोये हुए बीज से है।[4] उनकी दृष्टि में अच्छे नैतिक जीवन का निर्वहन ही धर्म का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है और इसलिए वे अपने धर्म को नैतिकतावादी धर्म कहते थे, जो नैतिक सिद्धांतों पर आधारित है, जैसा कि गाँधीजी ने स्वयं कहा है, जैसे ही हम नैतिक आधार खो बैठते हैं, वैसे ही धार्मिक नहीं रह जाते है।[5]

उन्होंने नैतिकता को जीवन के मूल आधार के रूप में स्वीकार करते हुए यह माना है कि व्यक्ति ईश्वर को स्वयं अपने आप में पा सकता है। चूंकि व्यक्ति देवीय गुणों से युक्त है। अतः वह सत्यान्वेषण, तपस्या, आत्म–संयम तथा इन्द्रिय निग्रह से बुराइयों के ऊपर उठकर अपना चरम विकास कर सकता है। आत्म विजय प्राप्त करने के लिए लालायित व्यक्ति को किसी उच्च आदर्श की प्राप्ति की ओर प्रवृत होना आवश्यक है। अतः इस कार्य के लिए मनुष्य को नैतिक एवं भौतिक प्रगति का समन्वय करना होता है। व्यक्तिगत हित एवं सामाजिक हित का सम्बन्ध सभी प्राणियों के कल्याण की प्रेरणा प्रस्तुत करता है तथा मानव को ईश्वरतुल्य बना देता है। मनुष्य जबतक ईश्वरतुल्य नहीं बन जाता, तब तक उसे शांति नहीं मिल सकती है। इस स्थिति की प्राप्ति का प्रयास सर्वोच्च एकमात्र महत्वाकांक्षा है।[6]

गाँधी जी के सिद्धांतों का आधार सत्याग्रह था जिसमें सत्य एवं अहिंसा दो मौलिक तत्व थे। सत्याग्रह वस्तुतः वह केन्द्र है जिसके चारों ओर उनकी अन्य धारणायें, राजनीति का आध्यात्मीकरण, साधनों तथा साध्य की एकता, विश्व की नैतिक प्रकृति तथा अपने सिद्धांतों के लिए कुछ भी कष्ट उठाने, यहाँ तक कि मरने तक का भी संकल्प धूर्णित होता है। 'सत्याग्रह' शब्द का आविष्कार गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका आन्दोलन के क्रम में किया था, जिसका अर्थ होता है, सत्य पर डटे रहना अर्थात सत्य का बल। वे इसे आत्मबल और प्रेमवल भी कहा करते थे। राजनीतिक शक्ति का अहिंसापूर्ण विरोध, पाप के साथ असहयोग तथा उपवास करना इसके आवश्यक तत्व हैं, किन्तु, मात्र इतना ही इसका पूर्ण अर्थ नहीं है। बुराई को अच्छाई से विजय करने का ईसाई धर्म का सिद्धांत इससे अधिक मिलता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य का उपासक सत्य को हिंसात्मक साधनों से सिद्ध करने का प्रयत्न कदापि नहीं करेगा। क्योंकि जो बात प्रथम व्यक्ति को सत्य दिखलाई पड़ती है, हो सकता है, वही बात दूसरे व्यक्ति को असत्य प्रतीत होता हो। इसलिए सत्य को विजय कराने के लिए सर्वोतम साधन है, आत्म कष्ट द्वारा विरोधी को गलत मार्ग से हटाना।

सत्य का प्रचार करने का परित्याग करने वाले सुकरात ने सत्याग्रह का पालन किया था; प्रहलाद भी एक सच्चा सत्याग्रही बच्चा था, क्योंकि उसने प्रभु में विश्वास का परित्याग करने से अच्छा अपने पिता द्वारा दी गयी नाना प्रकार की यातनायें सहना सहर्ष स्वीकार किया। मीराबाई ने भी सत्याग्रह के शस्त्र का प्रयोग किया, जिस बात को वह गलत समझती थी, उसके समक्ष झुकने की अपेक्षा उसने सारे अपमान तथा कष्ट को प्रसन्नतापूर्वक सहन किया। इसलिए सत्याग्रह का अर्थ है बिना किसी दुर्भावना और घृणा के धैर्यपूर्वक कष्ट उठाना और उसके द्वारा अपने विरोधी की वात की सत्यता का विश्वास दिलाना। अपनी बात की सत्यता पर विश्वास दिलाने हेतु गाँधीजी ने सत्याग्रह के साथ रचनात्मक कार्यक्रम भी जोड़ दिया। एक सत्याग्रही धोखा, छल, कपट पर आधारित पशुवल के स्थान पर प्रेम और सत्य के नैतिक शस्त्र का प्रयोग करते हुए दिखलाई प्रतीत होते है। वे घृणा को प्रेम से, असत्य को सत्य से तथा हिंसा को आत्मकष्ट द्वारा विजय करने का प्रयत्न करते है। दक्षिण अफ्रीका से वापस लौटते समय गाँधीजी ने जेल में अपने द्वारा तैयार किया जूता जनरल स्ट्म्स को भेंट किया था। इस अवसर पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए स्ट्मस ने लिखा है कि उन्होंने इसे पहना है, यद्यपि उन्हें लगता है कि वह इतने बड़े आदमी के द्वारा तैयार किये गये जूता पहनने का हकदार नहीं है। पुनः आगे लिखता है, यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे एक ऐसे आदमी का विरोधी होने का सौभाग्य मिला जिसे मैं स्वयं बड़े सम्मान से देखता हूँ। उन्होंने कभी किसी घटना के मानवीय पक्ष को नहीं विस्मृत किया, कभी क्रोध नहीं किया, घृणा नहीं की और भयंकर परिस्थिति में भी विनम्र विनोद बनाये रखा। उनकी शैली और भावना हमारे समय की प्रचलित कठोर एवं नृशंस शक्तियों के विपरीत थी।[7] गाँधीजी सत्याग्रह को आत्मबल भी कहते थे। इसका कारण यह है कि आत्मा के अस्तित्व और उसकी वास्तविकता में विश्वास सत्याग्रह के नैतिक शस्त्र के प्रयोग का प्रथम शर्त है। वह कहा करते थे कि एक सत्याग्रही की पराजय कभी भी नहीं हो सकती है, संघर्ष में सत्यवादी को सत्य को देखने की सामर्थ्य देने के लिए कभी–कभी मरना आवश्यक हो जाता है, अत्याचारी के अंतःकरण को जागृत करने की इतनी शक्ति और किसी वस्तु में नहीं है जितनी की सत्याग्रही को अपने उद्देश्य के लिए सहर्ष मरते हुए देखने में।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- II, Issues-40, YEAR- April-June 2026

गाँधीजी का कहना था कि सत्याग्रह का सिद्धांत कोई नवीन सिद्धांत नहीं है, वह मात्र गृह विज्ञान के नियमों का राजनीतिक क्षेत्र में आरोपण है। घर के झगड़ों को सामान्यतः प्रेम और सहानुभूति के साथ सुलझाया जाता है। पीड़ित सदस्य दूसरे के प्रति इतना प्रेम रखता है कि यह अपने से मतभेद रखनेवालों से बदला लिए बिना और उनसे क्रुद्ध हुए बिना आघात सह लेता है। सत्य का नियम प्रेम का नियम है तथा इस तथ्य का महत्वपूर्ण परिणाम भी है। अंत में सत्याग्रही विरोधी को अपने पक्ष में कर लेता है। सत्याग्रह, गाँधी जी द्वारा आविष्कृत एक विलक्षण शस्त्र है, इसके द्वारा पराधीन देश अपने विरोधियों का एक बूँद रक्त बहाये बिना ही स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है। कभी–कभी सत्याग्रह को युद्ध का नैतिक विकल्प भी कहा जाता है। ऐसा कहना मूलरूप से उचित ही है। यह संसार के संघर्ष और अन्याय का अन्त नहीं करता। यह तो मात्र उनका अन्त करने की प्रक्रिया में प्रेम और मानव जाति के भ्रातृ–भाव को संचालित कर देता है, ऐसा करके यह उनके गुणों को उच्चत्तर बना देता है। यह एक ऐसा युद्ध है, जो अपनी बहुत क्रूर विशेषताओं से अभियुक्त है, यह एक अत्यन्त वीरतापूर्ण युद्ध है। इसका उद्देश्य विनाश के उददेय से अधिक पवित्र है।

बुराईयों के बदले में भलाई करने और घृणा को प्रेम से विजय करने का सिद्धांत, मूलतः बहुत प्राचीन सिद्धांत है। गाँधीजी इसे शाश्वत भी कहते है। भगवान बुद्ध तथा ईसा ने भी इसका उपदेश दिया तथा इसे अपने आचरण में उतार लिया। इन बातों का उल्लेख टॉल्सटॉय, रस्किन तथा थोरियों सरीखे आधुनिक विचारकों के विचारों में भी मिलता है। जिनका प्रभाव गाँधीजी पर प्रतिबिम्बित होता है। किन्तु इन विचारकों ने अहिंसात्मक विरोध का अनुमोदन व्यक्तियों और समूह के लिए किया था, बल्कि गाँधीजी ने इसे सार्वजनिक क्षेत्र में भी आरोपित हीं नहीं किया, वरन् इसका प्रयोग भी किया। उन्होंने इसका प्रयोग सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं के हल के लिए भी विस्तृत स्तर पर किया। वह इसे सर्व व्यापक बनाना चाहते थे, समस्त मानव क्रियाओं पर इसे आरोपित करना चाहते थे। इन्हीं बातों में उनकी पूर्व के विचारकों से मौलिक भिन्नता थी। किन्तु उनका आग्रह था कि सार्वजनिक क्षेत्र में इसका प्रयोग करने के पूर्व हमें इसे अपने व्यक्तिगत जीवन में अंगीकार कर लेना चाहिए। किसी व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत जीवन में अहिंसावादी हुए बिना सार्वजनिक विषयों में अहिंसावादी बनना असंभव सा है। यदि कोई मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा का पालन नहीं कर सकता तो सरकार के साथ अपने आचरण में अहिंसा का पालन करना एक तरह से कायरता होगी या अधिक से अधिक वह विवशतापूर्ण सदाचार के समान होगा। गाँधीजी का मानना था कि अहिंसा मानव जाति का धर्म उसी तरह है, जिस तरह हिंसा हिंसक पशुओं का धर्म है।[8]

अहिंसा की वर्णमाला का सर्वोतम पाठ गृहस्थी रूपी पाठशाला में पढ़ा जाता है और अपने अनुभव से गाँधीजी कहते हैं कि यदि वहाँ सफलता मिल जाती है तो निश्चित रूप से ही सभी जगहों पर फलता प्राप्त होगी। एक अहिंसावादी के लिए सम्पूर्ण संसार ही एक परिवार है।[9] गाँधीजी के विचारों का मूलाधार ही अहिंसा है। गाँधीजी सार्वजनिक सत्याग्रह को व्यक्तिगत घरेलू सत्याग्रह का ही एक विस्तृत रूप मानते थे जो व्यक्ति व्यक्तिगत जीवन में सत्याग्रह के सिद्धांतों का पालन नहीं कर कभी–कभी सत्याग्रह को युद्ध का नैतिक विकल्प भी कहा जाता है। ऐसा कहना मूलरूप से उचित ही है। यह संसार के संघर्ष और अन्याय का अन्त नहीं करता। यह तो मात्र उनका अन्त करने की प्रक्रिया में प्रेम और मानव जाति के भ्रातृ–भाव को संचालित कर देता है, ऐसा करके यह उनके गुणों को उच्चत्तर बना देता है। यह एक ऐसा युद्ध है, जो अपनी बहुत क्रूर विशेषताओं से अभियुक्त है, यह एक अत्यन्त वीरतापूर्ण युद्ध है। इसका उद्देश्य विनाश के उद्देश्य से अधिक पवित्र है।

बुराईयों के बदले में भलाई करने और घृणा को प्रेम से विजय करने का सिद्धांत, मूलतः बहुत प्राचीन सिद्धांत है। गाँधीजी इसे शाश्वत भी कहते है। भगवान बुद्ध तथा ईसा ने भी इसका उपदेश दिया तथा इसे अपने आचरण में उतार लिया। इन बातों का उल्लेख टॉल्सटॉय, रस्किन तथा थोरियों सरीखे आधुनिक विचारकों के विचारों में भी मिलता है। जिनका प्रभाव गाँधीजी पर प्रतिबिम्बित होता है। किन्तु इन विचारकों ने अहिंसात्मक विरोध का अनुमोदन व्यक्तियों और समूह के लिए किया था, बल्कि गाँधीजी ने इसे सार्वजनिक क्षेत्र में भी आरोपित हीं नहीं किया, वरन् इसका प्रयोग भी किया। उन्होंने इसका प्रयोग सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं के हल के लिए भी विस्तृत स्तर पर किया। वह इसे सर्व व्यापक बनाना चाहते थे, समस्त मानव क्रियाओं पर इसे आरोपित करना चाहते थे। इन्हीं बातों में उनकी पूर्व के विचारकों से मौलिक भिन्नता थी। किन्तु उनका आग्रह था कि सार्वजनिक क्षेत्र में इसका प्रयोग करने के पूर्व हमें इसे अपने व्यक्तिगत जीवन में अंगीकार कर लेना चाहिए। किसी व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत जीवन में अहिंसावादी हुए बिना सार्वजनिक विषयों में अहिंसावादी बनना असंभव सा है। यदि कोई मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा का पालन नहीं कर सकता तो सरकार के साथ अपने आचरण में अहिंसा का पालन करना एक तरह से कायरता होगी या अधिक से अधिक वह विवशतापूर्ण सदाचार के समान होगा। गाँधीजी का मानना था कि अहिंसा मानव जाति का धर्म उसी तरह है, जिस तरह हिंसा हिंसक पशुओं का धर्म है।

अहिंसा की वर्णमाला का सर्वोतम पाठ गृहस्थी रूपी पाठशाला में पढ़ा जाता है और अपने अनुभव से गाँधीजी कहते हैं कि यदि वहाँ सफलता मिल जाती है तो निश्चित रूप से ही सभी जगहों पर फलता प्राप्त होगी। एक अहिंसावादी के लिए सम्पूर्ण संसार ही एक परिवार है। गाँधीजी के विचारों का मूलाधार ही अहिंसा है। गाँधीजी सार्वजनिक सत्याग्रह को व्यक्तिगत घरेलू सत्याग्रह का ही एक विस्तृत रूप मानते थे जो व्यक्ति व्यक्तिगत जीवन में सत्याग्रह के सिद्धांतों का पालन नहीं कर सकते, वे सार्वजनिक जीवन में भी इसका पालन नहीं कर सकते। इसी कारण से वर्तमान समय में समाजवादियों और साम्यवादियों द्वारा इसका प्रयोग असफल रहा है, उनके हाथों पड़कर यह सत्याग्रह दुराग्रह में परिणत हो गया है। अहिंसा का धर्म मात्र ऋषियों एवं संतों के लिए ही उपयोगी नहीं है, वरण यह सर्वसाधारण जनता के लिए भी है।[10]

अन्याय के विरूद्ध सत्याग्रह करने से पूर्व किसी व्यक्ति को अपने हृदय को टटोलकर देखना चाहिए और अपने ऊपर विजय प्राप्त करना चाहिए। पूर्ण आत्म निग्रह और आन्तरिक अनुशासन ही किसी व्यक्ति को इस सबसे जोरदार शस्त्र का प्रयोग करने की सामर्थ्य प्रदान करता है, आन्तरिक चरित्र के अभाव में यह निश्चित रूप से प्रभावहीन रहेगा। याद रखने की बात है कि गाँधीजी ने सत्याग्रह मात्र तब प्रारम्भकिया था, जब उन्होंने अपने जीवन को त्याग और तपस्यामय बना लिया और पूर्ण आत्म–विजय प्राप्त कर लिया था। असहयोग आन्दोलन के स्थगित होने के पश्चात् जिस तरह गाँधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दिया, उसका उददेश्य जनता को महत्वपूर्ण आत्म–विजय की शिक्षा देना था। जिस तरह रणक्षेत्र में जाने से पूर्व, सैनिकों को युद्ध कला एवं तकनीकी की ट्रेनिंग लेनी पड़ती है, उसी तरह एक अहिंसात्मक युद्ध में भाग लेने से पूर्व सरल जीवन तथा सत्य के प्रति निष्ठा के अतिरिक्त विधिप्रियता की भी ट्रेनिंग लेनी पड़ती है। केवल कानून का पालन करने की कला में सिद्धहस्त व्यक्ति ही कानून की अवज्ञा करने की कला जानता है। जो व्यक्ति निर्माण करना जानता है, वहीं व्यक्ति नष्ट कर सकता है। यह आध्यात्मिक एकता के सिद्धांत का विनियोग

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- II, Issues-40, YEAR- April-June 2026

है। अहिंसा का मूलभूत सिद्धांत इसी पर आधारित है कि जो एक के लिए श्रेयस्कर है, वह समान भाव से सम्पूर्ण संसार के लिए श्रेयस्कर है।[11]

गाँधीजी अहिंसा को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते है कि अहिंसा भीरूओं एवं कायरों का मार्ग नहीं है। यह तो उन वीरों का मार्ग है, जो मृत्यु का सामना करने के लिए प्रस्तुत है। जो हाथ में तलवार धारण किये मृत्यु का वरण करता है, वह निःसंदेह वीर है, किन्तु वह उससे भी अधिक वीर है जो अपनी कनिष्ठका तक उठाये बिना विचलित हुए मृत्यु का सामना करता है।[12] उनकी दृष्टि में ईश्वर और सत्य को प्राप्त करने के लिए प्रेम सबसे बड़ी साधना है, जो अहिंसा का भावात्मक रूप कही जा सकती है। मानव के ह्रदय में प्रेम एक दैवीय नियम की अभिव्यक्ति है; ईश्वरीय गुण है जिसके बिना मानव अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति में लगा रहता है और समाज के प्रति अपने कर्तव्य का उसे बोध नहीं होता है। जो शक्ति अहिंसा और प्रेम में है, वह किसी में नहीं। इसलिए जो कार्य बड़े तर्क और शक्ति के द्वारा नहीं किये जा सकते है, वे अहिंसा और प्रेम के बल पर आसानी से किये जा सकते है।

प्राचीन भारतीय मनीषी अपने दैनन्दिन जीवन का प्रारम्भ ही इस प्रार्थना के साथ किया करते थेः

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, या कश्चित् दुख भाग भवेत।।

यही भावना सर्वोदय का मंत्र थी जो रस्किन की पुस्तक को पढ़ने के बाद गाँधी जी के मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से ग्रहण करने लगी। गाँधीजी ने पाश्चात्य उपयोगिता विचारधारा की आलोचना करते हुए कहा कि पाश्चात्य सभ्यता मात्र सौ वर्ष प्राचीन है। इतने कम समय में ही पाश्चात्य जन सांस्कृतिक अराजकता की स्थिति में पहुँच गये हैं। वे नहीं चाहते थे कि भारत भी यूरोप के समान इस स्तर तक गिर जाय। पाश्चात्य देशों की शक्ति पिपासा तथा उपनिवेशवाद की भूख ने उनके जीवन को नाटकीय बना देने की स्थिति उत्पन्न कर दी है। बड़े–बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने पाश्चात्य जगत की नैतिकता का अवमूल्यन कर दिया है। उन्होंने पाश्चात्य् विचारों की प्रबल भौतिकतावादी धारा को भारत में रोका, क्योंकि वे यह जानते थे कि यह हमें सर्वोदय की दिशा के विपरीत ऐसी दिशा में ले जाएगा, जहाँ शक्तिशाली व्यक्ति निर्बल का दमन और शोषण करते है। अँग्रेजों ने जालियाँवाला बाग हत्याकांड को अपने उपयोगितावादी तकों के आधार पर उचित बतलाया था, किन्तु सर्वोदय कभी इसका समर्थन नहीं करेगा, प्रत्युत विरोध करेगा। उनका मानना था कि अहिंसा का पुजारी उपयोगितावाद बड़ी से बड़ी संख्या का ज्यादा से ज्यादा हित) का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो 'सर्वभूत हिताय' अर्थात सबसे अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायेगा। इस तरह वह इसलिए, मरना चाहेगा कि दूसरा जी सके। दूसरों के साथ–साथ वह अपनी सेवा भी आप कर सकेगा। सबसे अधिकतम सुख के अंदर अधिकांश का अधिकतम सुख भी मिला हुआ है और इसलिए अहिंसावादी अपने मार्ग पर अनेकों बार मिलेंगे, किंतु अंत में ऐसा भी अवसर आएगा, जब उन्हें अलग–अलग मार्ग स्वीकार करने होंगे और किसी किसी स्थिति में एक दूसरे का विरोध भी करना होगा, परंतु अहिंसावादी हमेशा बलिदान हो जाने को तैयार रहता है।[13]

सत्य और अहिंसा को, गाँधीजी मनुष्य के लिए अन्तरनिहित धर्मभाव के विकास के लिए अपरिहार्य समझते थे। इन दो शब्दों का अविभाज्य जोड़ा है। अहिंसा के बिना सर्वोच्च सत्य की प्राप्ति असंभव है। गाँधीजी के लिए सत्य ईश्वर है और जो व्यक्ति दूसरे को आघात पहुँचाता है, वह सत्य का उल्लंघन करता है। हिंसा असत्य है, क्योंकि वह जीवन की एकता और पवित्रता के विरूद्ध है। इसलिए जीवन में अहिंसा का पालन करना सत्य के उपासक का सबसे बड़ा कर्तव्य है। अहिंसा को सर्वोत्कृष्ट धर्म कहना गाँधीजी की मौलिक अभिव्यक्ति नहीं थी। महाभारत के शब्द 'अहिंसा परमो धर्मः' पूर्व से भारत में विख्यात है। यह अहिंसा जैन मत सार है जिसके मानने वाले लाखों लोग है। गाँधीजी की देन इस बात में है कि सत्य और अहिंसा को एक व्यापक अर्थ प्रदान किया और व्यापक स्तर पर इसका प्रयोग किया।

अहिंसा का पुजारी उपयोगितावाद का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो 'सर्वभूत–हिताय' यानी सबके अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायेगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा की दूसरे जी सकें। दूसरों के साथ–साथ वह अपनी सेवा भी आप मरकर करेगा। सबसे अधिकतम सुख के भीतर अधिकांश का अधिकतम सुख भी मिला हुआ है और इसलिए अहिंसावादी और उपयोगितावादी अपने रास्ते पर कई बार मिलेंगे। किन्तु अंत में ऐसा भी अवसर आयेगा, जब उन्हें अलग–अलग रास्ते पकड़ने होंगे और किसी–किसी दशा में एक–दूसरे का विरोध भी करना होगा। तर्कसंगत बने रहने के लिए उपयोगितवादी अपने को कभी बलि नहीं कर सकता। परंतु अहिंसावादी हमेशा मिट जाने को तैयार रहेगा।[14]

सेवा की जड़ में सेवा की जड़ में जब तक प्रेम या अहिंसा की भावना न हो तब तक वह सम्भव ही नहीं है। सच्चा प्रेम समुद्र की तरह निस्सीम होता है और ह्रदय के भीतर ज्वार की तरह उठकर बढ़ते हुए वह बाहर फैल जाता है तथा सीमाओं को पार करके दुनिया के छोरों तक जा पहुँचता है। सेवा के लिए आवश्यक दूसरी चीज है शरीर–श्रम, जिसे गीता में यज्ञ कहा गया है; शरीर–श्रम के बिना भी सेवा असंभव है। सेवा के लिए जब कोई पुरुष या स्त्री शरीर–श्रम करती है, तभी उसे जीने का अधिकार प्राप्त होता है।[15]

जब तक हम अपना अहंकार भूलकर शून्यता की स्थिति प्राप्त नहीं करते, तब तक हमारे लिए अपने दोषों को जीतना सम्भव नहीं है। ईश्वर पूर्ण आत्म–समर्पण के बिना संतुष्ट नहीं होता। वास्तविक स्वतंत्रता का इतना मूल्य वह अवश्य चाहता है और जब मनुष्य अपना ऐसा समर्पण कर चुकता है तब तुरंत ही वह अपने को प्राणिमात्र की सेवा में लीन पाता है। यह सेवा ही तब उसके लिए आनन्द और आमोद का विषय हो जाती है। तब वह एक बिल्कुल नया ही आदमी बन जाता है और ईश्वर की सृष्टि की सेवा में अपने को खपाते हुए कभी नहीं थकता।[16]

सत्य की खोज करनेवाला, अहिंसा बरतने वाला परिग्रह नहीं कर सकता। परमात्मा परिग्रह नहीं करता। अपने लिए जरूरी चीज वह रोज की रोज पैदा करता है। इसलिए अगर हम उस पर पूरा भरोसा रखते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि हमारी जरूरत की चीजें वह रोजना देता है, और देगा।[17]

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ हिंसा न करना, किसी को आघात नहीं पहुँचाना, किसी को कष्ट नही देना। किन्तु गाँधीजी ने इसका प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में किया है। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी जीवधारी को आधात नहीं पहुँचाना चाहिये। एक अहिंसा के पुजारी को न केवल किसी व्यक्ति के शरीर पर ही कोई आघात पहुँचाना चाहिये और ह्रदय में किसी के प्रति कोई दुर्भावना भी नहीं रखनी चाहिए। उसे किसी को अपना शत्रु नहीं समझना चाहिये और यदि कोई दूसरा अपने आपको उसका शत्रु समझता है, तो भी एक सत्याग्रही को उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखनी चाहिए। यद्यपि यह शब्द नकारात्मक है, किन्तु अहिंसा मात्र एक नकरात्मक

गुण ही नहीं है, इसमें भलाई करना भी उतना ही अन्तरनिहित है जितना कि किसी को हानि नहीं पहुँचाना। इसके अन्तर्गत उपमानवी जीवन भी आ जाता है। सक्रिय रूप से इसका अर्थ प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना रखना। यह सर्वोच्च प्रेम, सर्वोच्च दयालुता तथा सर्वोच्च आत्म बलिदान है। यहाँ यह कहना वांछनीय प्रतीत होता है कि गाँधीजी के अहिंसा का अर्थ जिस प्रेम से है, वह स्वार्थ का विषय नहीं है, यह ऐसा प्रेम नहीं है जो प्रेमपात्र के बदले किसी से पुरस्कार की आशा नहीं करता है, यह सच्चा प्रेम है जो मात्र आत्म–बलिदान करना जानता है, किन्तु बदले में कुछ प्रतिदान नहीं चाहता है।

गाँधीजी सत्य और अहिंसा पर आधारित स्वराज की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने बड़े–बड़े उद्योग–धंधों का विरोध किया था और सत्य एवं अहिंसा में सर्वजन का हित देखते थे।[18] सर्वोदय का विश्वास राजनीति में न होकर लोकनीति में है, इसलिए सर्वोदय में अनुशासन की प्राथमिकता है। सर्वोदयी व्यवस्था शासन से अनुशासन की ओर, सत्ता से स्वतंत्रता की ओर, नियंत्रण से संयम की ओर तथा अधिकारों से कर्तव्य की ओर बढ़ती ही मानवता के चरम विकास का मूल ही सर्वोदय है। इस दृष्टि से गाँधीजी एक आदर्शवादी विचारक थे और वे ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जो सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक पुनरूत्थान पर आधारित हो। सर्वोदयी व्यवस्था के अन्तर्गत समाज की प्रकृति आध्यात्मिक होगी और धर्म के द्वारा समाज का मार्ग–दर्शन किया जायेगा और धर्म ही निर्णायक तत्व होगा। समाज में सभी व्यक्ति नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का सम्मान करेंगे। समाज में अहिंसा एवं सत्य सर्वोच्च विधि होंगे और समाज की समस्त गतिविधियों पर नियंत्रण भी इन्हीं का होगा। इस समाजिक व्यवस्था में सामाजिक भेदभाव तथा व्यक्ति के बीच जाति, धर्म, लिंग अथवा नस्ल के आधार पर कोई भेद–भाव नहीं होगा। कोई भी वर्ग किसी अन्य वर्ग का शोषण नहीं करेगा तथा इसमें व्यक्तियों को अपने विकास के समुचित अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। ऐसी सामाजिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषता अपरिग्रह और अस्तेय होगी।

सत्य और अहिंसा के साथ ही साथ गाँधीजी इस बात पर जोर देते हैं कि हमारे साधन के साथ हमारे साध्य के अनुरूप होने चाहिये। हमारा साध्य नैतिक हो, मात्र इतना ही पर्याप्त नहीं है, यह बात उतनी ही आवश्यक है कि हमारे साधन भी विशुद्ध हों। साधनों की अनैतिकता निश्चितरूप से साध्य की नैतिकता को नष्ट कर देती है। यदि एक व्यक्ति गलत मार्ग पर चलता है तो निश्चित रूप से अपने निर्धारित लक्ष्य से अन्यत्र चला जायेगा। साधनों की पवित्रता के विषय में गाँधीजी इतने सतर्क थे कि वह हिंसा, धोखे और असत्य का प्रयोग करके स्वराज तक लेने के लिए तैयार नहीं थे। यही कारण है कि उन्होंने 1922 में असहयोग आन्दोलन को, चौरी–चौरा की हिंसात्मक घटना के बाद, बिना किसी शर्त के आन्दोलन को स्थगित कर दिया, जबकि ब्रितानी सरकार बुरी तरह हिल चुकी थी और सफलता सामने खड़ी दिखाई दे रही थी, क्योंकि उनकी समझ थी कि साधन साध्य के अनुरूप नहीं रहे तो सफलता की प्राप्ति क्षणिक सिद्ध होगी।

गाँधीजी के अनुसार साधन ही सब कुछ है। जैसा साधन होगा वैसा ही साध्य होगा। गन्दे साधनों से मिलने वाली चीज भी गन्दी ही होगी। साधन और साध्य को अलग करने वाली कोई दीवार नहीं है। वास्तव में सृष्टिकर्त्ता ने हमें साधनों पर नियंत्रण दिया है; साध्य पर तो कुछ भी नहीं दिया। लक्ष्य की सिद्ध ठीक उतनी ही शुद्ध होती है, जितने हमारे साधन शुद्ध होते हैं। यह बात ऐसी है जिसमें किसी अपवाद की गुंजाइश नहीं है।

कोई असत्य से सत्य को नहीं पा सकता। सत्य को पाने के लिए हमेशा सत्य का आचरण करना ही होगा। अहिंसा और सत्य की तो जोड़ी है न? हरगिज नहीं। सत्य में अहिंसा छिपी हुई है और अहिंसा में सत्य। इसीलिए मैंने कहा कि सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो रूप हैं। दोनों की कीमत एक ही है। केवल पढ़ने में ही फर्क है; एक तरफ अहिंसा है, दूसरी तरफ सत्य। पूरी–पूरी पवित्रता के बिना अहिंसा और सत्य निभ ही नहीं सकते। शरीर या मन की अपवित्रता को छिपाने से असत्य और हिंसा ही पैदा होगी।[19]

साधनों की पवित्रता पर आग्रह करके गाँधीजी ने राजनीति का आध्यात्मिकरण कर दिया। जबकि उनके समय पर राजनीतिज्ञों की प्रायः धारणा थी कि राजनीति में चाहे वह शासकों के प्रति या एक देश का दूसरे देश के प्रति, सफलता ही सर्वप्रमुख है तथा जो भी बात सफलता में सहायक हो, वह उचित है, चाहे वह धोखाधड़ी हो या छल–कपट। फासिस्ट तथा साम्यवादी इस धारणा के मुख्य प्रचारक एवं सहायक थे कि साध्य ही साधनों का औचित्य है। किन्तु गाँधीजी ने इस विचारधारा के ठीक विपरीत नये विचार को अपने जीवन तथा भारतीय राजनीति में उतारने का प्रयत्न किया। इस तरह उन्होंने राजनीति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया।

गाँधीजी एक ऐसे मौलिक चिन्तक थे जो साधन और साध्य की एकरूपता को स्थापित करते हुए साधनों की पवित्रता में आस्था रखते थे। उनके नैतिक दर्शन में अहिंसा एक सर्वोच्च साध्य होने के साथ उच्चतम् लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन भी है। गाँधीजी के दर्शन में साध्य और साधन का यह समीकरण एवं एकीकरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं मौलिक पहलू है। वे मूलतः भौतिक आदर्शवादी थे और इसी मापदण्ड से वे साधनों की पवित्रता में आस्था रखते थे। जिस वस्तु की अन्तरात्मा पुष्टि नहीं होती है उसे राजनीतिक आधार पर पुष्ट नहीं किया जा सकता। इस आधार पर गाँधीजी साध्य और साधनों को भिन्न–भिन्न न मानकर उन्हें एक ही सिक्के के दो पहलू मानते थे। अपने पूर्व के मैकिया वेली विचारवाले चिन्तकों के चिन्तन का उन्होंने इस तरह खंडन किया। उन्होंने कहा कि लोग कहते हैं–साधन आखिर साधन ही है। मैं कहूँगा, साधन ही आखिर सबकुछ है। जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा, हिंसक साधनों से हिंसक स्वराज्य मिलेगा। वह स्वराज्य संसार के लिए और स्वयं हिन्दुस्तान के लिए संकटरूप सिद्ध होगा। फ्रांस ने अपनी स्वतंत्रता हिंसक साधनों द्वारा प्राप्त की, वह अपनी इस हिंसा की महंगी कीमत अभी तक चुका रहा है।[20] साधन और साध्य के बीच दोनों को अलग–अलग करने वाली कोई दीवार नहीं है। निश्चितरूप से प्रभु ने साधनों पर नियंत्रण रखने की शक्ति हमें दी है। द्धसीमित मात्र मॅऋ, परंतु साध्य पर नियंत्रण रखने की सिद्धि के अनुपात में ही होती है। यह ऐसा सिद्धांत है जिसमें अपवाद की कोई संभावना नहीं है।[21] जीवन के मेरे तत्वज्ञान में साधन और साध्य पर्यायवाची शब्द है, एक दूसरे के साथ चल सकते है।[22] साध्य और साधन की एकरूपता और इसकी अनुरूपता तथा साधनों की पवित्रा आधुनिक राजनीतिक दर्शन को गाँधीजी की अद्वितीय देन कहा जा सकता है। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर गाँधीजी ने राजनीति को इतनी उच्चता प्रदान कर दी कि राजनीति जनसेवा का माधयम बन गई। गाँधीजी के राजनीतिक दर्शन की विशेषता रही है कि उन्होंने मात्र स्वराज्य का निरूपण अपनी लेखनी से नहीं किया, अपितु उन्होंने राज्य संरचना के प्रत्येक अंग–उपांग का विस्तृत विवेचन करते हुए व्यवहारिक पक्षों की भी स्पष्ट विवेचना की है। स्वराज्य की अवधारणा के निरूपण के पश्चात् गाँधीजी के द्वारा राज्य–संरचना के सम्बन्ध में विचार भी व्यक्त किये।

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम इन्हीं विचारों, चिन्तनों तथा विचारों का प्रतिफलन है। उनके रचनात्मक कार्यक्रम में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह तथा सर्वोदय समाज के समग्रता की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

सदियों से ब्रिटिश औपनिवेशिक गुलामी की जंजीरों में जकड़ी भारतीय जनता अपने मूल स्वरूप को भी विस्मृत कर चुकी थी। कभी भारत का व्यवसायिक सम्बन्ध सम्पूर्ण एशियाई देशों के साथ था, कभी भारत ने ही प्रजातांत्रिक शासन–व्यवस्था विश्व को दिया था, कभी विश्व का प्रमुखतम शिक्षण संस्थान भारत में ही था, कभी गृह उद्योग एवं कुटीर उद्योग द्वारा एक से एक उन्नत किस्म के समान भारत में उत्पादित होता था जिसका विदेशों में निर्यात भी होता था और इस सबका केन्द्र विन्दु भारत में बिहार होता था। किन्तु मध्यकाल में धीरे–धीरे भारतीय आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था अवसान की ओर बढ़ती चली गई।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने भारत के गृह उद्योग एवं कुटीर उद्योग को समाप्त कर दिया। क्योंकि इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रांति 18वीं शताब्दी के मध्य में प्रारम्भ हो चुका था जिसके कारण बड़े–बड़े कारखानों के उत्पादित सामान अपने उपनिवेश के बाजारों में विक्रय करने लगे थे तथा कच्चा माल भी यहीं से प्राप्त करने लगे थे। ब्रितानी सरकार सामान पर कोई कर नहीं लगाती थी या कर लगाती थी तो न्यूनतम। दूसरी ओर गृह उद्योग या कुटीर उद्योग द्वारा उत्पादित सामानों पर अधिकतम कर लगाया जाता था। परिणामस्वरूप भारतीय कुटीर उद्योग स्वतः ही मृत हो गये थे। भारतीय ज्ञान विज्ञान विलुप्त हो चुके थे तथा उनके स्थान पर अंग्रेजी शिक्षा पद्धति प्रारंभ हो चुकी थी जिससे भारत का सांस्कृतिक पतन हो रहा था। अंग्रेजों के प्रति स्वामि भक्ति भी बढ़ रहा था तथा समाज में छुआ–छूत तथा हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्यता व्याप्त हो चुकी थी। राजनीतिक अधिकार के प्रति तथा कथित अभिजन समाज ही चेतना था जिनकी संख्या मुट्ठी भर थी। इस परिवेश में गाँधीजी ने अपने नवीनतम सिद्धांत सत्य, अहिंसा के आधार पर सर्वोदय समाज की कल्पना की तथा इस उद्देश्य से अपने सिद्धांत के सरलीकरण या सामान्यीकरण उद्देश्य से रचनात्मक कार्यक्रम प्रारंभ किया जिसका उद्देश्य मात्र स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था, वरन् समाज के प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति करना था। इस तरह गाँधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम भी उनके उद्देश्य की प्राप्ति का साधन था जिसमें समाज के सभी वर्गों का जोड़ना मुख्य उद्देश्य था।

महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम का क्रमबद्ध विकास असहयोग आन्दोलन के नागपुर अधिवेशन से होता है। वस्तुतः नागपुर के काँग्रेस अधिवेशन से भारत के इतिहास में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव होता है। निर्बल एवं आग्रहपूर्ण प्रार्थनाओं का स्थान उत्तरदायित्व के एक नवीन याद तथा स्वालम्बन की एक नवीन भावना ने ले लिया। जनता ने अनुभव किया कि यदि उसे स्वतंत्र होना है तो इसके लिए स्वयं प्रयास करना पड़ेगा।[23] असहयोग आन्दोलन के दो पक्ष थेः प्रथम पक्ष बहिष्कार तथा दूसरा पक्ष रचनात्मक कार्यक्रम। गाँधीजी की समझ थी कि ब्रितानी सरकार के विरूद्ध यह लड़ाई लम्बी लड़ी जायेगी, ऐसी स्थिति में कार्यकर्ताओं के साथ–साथ जनता के सहयोग की अपेक्षा सतत् रहेगी और जनता के सतत् सहयोग के लिए आवश्यक एवं वाँछनीय था, दिग्भ्रमित या बुरी परम्पराओं की जंजीरों से जकड़ी जनता को उनसे मुक्त कराया जाय। तत्कालीन भारतीय जनमानस में व्याप्त अंधविश्वास, अशिक्षा, आत्मबल का अभाव, टुकड़ों–टुकड़ों में विभाजित समाज, छुआ–छूत, हिन्दू–मुस्लिम एकता आदि कमजोर पक्ष को दूर करने के लिए गाँधीजी का रचनात्मक कार्यों के द्वारा जन–मानस को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ना ही मुख्य था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रोम्याँ रोलाँ, महात्मा गाँधी जीवन एवं दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, वर्ष 2008, पृ० 24–25.
2. हरिजन, 10 फरवरी, 1940.
3. यंग इडिया, 14 अक्टूबर, 1926.
4. महात्मा गाँधी, एथिकल रिलीजन, पृ० 51.
5. यंग इंडिया, 24 नवम्बर, 1921, पृ० 385.
6. महात्मा गाँधी, गीता द मदर, पृ० 385.
7. लुई फिशर, द लाइफ ऑफ महात्मा गाँधी, ग्रानदा पब्लिकेशन, पृ० 152.
8. यंग इंडिया, ।। अगस्त, 1920.
9. हरिजन, 12 नवम्बर, 1938, पृ० 325.
10. यंग इंडिया, 11 अगस्त, 1920
11. हरिजन, 12 नवम्बर, 1938, पृ० 329.
12. यंग इंडिया, 11 अगस्त, 1928.
13. हिन्दी नवजीवन, 9 दिसम्बर, 1926.
14. महात्मा गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद, 2008, पृ० 58.
15. यंग इंडिया, 20 सितम्बर, 1928.
16. हिन्दी नवजीवन, 20 दिसम्बर, 1928.
17. मंगल–प्रभात, पृष्ठ–29, अंक 6.
18. महात्मा गाँधी, द क्लेक्टेड वर्क्स, खंड–8, पृ० 239 एवं 375.
19. महात्मा गाँधी, मेरे सपनो का भारत, पृ० 59.
20. यंग इंडिया, 17 जुलाई, 1934.
21. यंग इंडिया, 17 जुलाई, 1924.
22. यंग इंडिया, 26 जुलाई, 1924.
23. डॉ० पट्टाभि सीता रमैया; भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का इतिहास, एस. चाँद, दिल्ली, 1969, पृ० 353.

*****